ॐ

आत्मसिद्धि (हिन्दी)

जो स्वरूप समजे बिना, पायो दुःख अनन्त ।
समझायो तत्पद नमूँ, श्री सदगुरु भगवंत ।।१।।
वर्तमान इस काल में, मोक्षमार्ग अति लुप्त ।
विचारने आत्मार्थी को, कहता यहाँ अगुप्त ।।२।।
कोई क्रिया-जड़ हो रहे, शुष्क ज्ञान में कोई ।
माने मारग-मोक्ष का, करुणा देखत होई ।।३।।
बाह्य क्रिया में मगन हैं, अन्तर भिदा न कोई ।
ज्ञान-मार्ग निषेध कर, क्रिया-जड़ वह होई ।।४।।
बन्ध-मोक्ष है कल्पना, कहते वाणी माहिं ।
रहते मोहावश में, जो शुष्क-ज्ञानी कहाहिं ।।५।।
वैराग्यादि सफल हैं, यदि सह आतम-ज्ञान ।
अरु वह आतम-ज्ञान की, प्राप्ति हेतु निदान ।।६।।
त्याग-विराग न चित्त में, होय न उसको ज्ञान ।
अटके त्याग-विराग में, तो भूले निज-भान ।।७।।
जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, समझो वहाँ वही ।
वहाँ-वहाँ सो-सो आचरे, आत्मार्थी जन सही ।।८।।
सेवे सदगुरु के चरण, त्याग कर निज-पक्ष ।
पावे वह परमार्थ को, निजपद का ले लक्ष ।।९।।
आत्मज्ञान समदर्शिता, विचरे उदय-प्रयोग ।
अपूर्व वाणी परमश्रुत, सदगुरु लक्षण योग्य ।।१०।।
प्रत्यक्ष सदगुरु सम नहीं, परोक्ष जिन उपकार;
ऐसा लक्ष हुए विना, जगे न आत्म-विचार ।।११।।
सदगुरु के उपदेश बिन, समझे नहि जिन-रूप ।
समझे बिन उपकार क्या ? समझत हों जिन-रूप ।।१२।।

आत्मादि अस्तित्व के, जो हैं निरूपक शास्त्र ।
प्रत्यक्ष सदगुरु योग नहि, तब आधार सुपात्र ।।१३।।
अथवा सदगुरु ने कहे, जो अवगाहन कार्य ।
उनको नित्य विचारना, छोड़ मतान्तर त्याज्य ।।१४।।
रोके जीव स्वच्छन्द तो, पावे निश्चित मोक्ष ।
पाया इस विधि अनन्त ने, कहते जिन निर्दोष ।।१५।।
प्रत्यक्ष सदगुरु योग से, स्वच्छन्दता रुक जाय ।
अन्य साधन-करन से, प्रायः दुगुनी हो जाये ।।१६।।
स्वच्छन्द मत-आग्रह तजे, वर्ते सदगुरु लक्ष ।
समकित उसको ही कहा, कारण मान प्रत्यक्ष ।।१७।।
मानादिक शत्रु महा, स्वच्छन्द से न नशाय ।
सदगुरु चरण सुशरण में, अल्प यत्न से जाय ।।१८।।
जो सदगुरु उपदेश से, पाया केवलज्ञान ।
गुरु रहे छद्मस्थ पर, विनय करें भगवान ।।१९।।
मार्ग ऐसा विनय का, कहते श्री वीतराग ।
मूल हेतु यह मार्ग का, समझे कोई सुभाग्य ।।२०।।
असदगुरु इस विनय का, लाभ लेय यदि कोई ।
महा मोहनीय कर्म से, डूबत भव-जल सोई ।।२१।।
होय मुमुक्षु जीव वह, समझत यह सुविचार ।
होय मतार्थी जीव वह, उलट करे निर्धार ।।२२।।
होय मतार्थी तो उसे, होय न आतम-लक्ष ।
ये ही मतार्थी लक्षण हैं, यहाँ कहे निष्पक्ष ।।२३।।

*　　*　　*